भारतीय आयोजन में विकास की रणनीति
(STRATEGY OF DEVELOPMENT IN INDIAN PLANNING)

भारत में विकास रणनीति

अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को स्वयं-स्फूर्त अर्थव्यवस्था (Self-generating economy) में परिवर्तित करने के लिए आर्थिक विकास की उचित विकास रणनीति (Development strategy) अपनानी आवश्यक है। आई. जी. पटेल के अनुसार, "रणनीति का अर्थ अनिवार्यत: सोच समझकर चुनाव करना है-किसी समस्या पर आक्रमण करने के लिए उचित प्रहार बिन्दु और प्रहार की रणनीति।" किसी विकास रणनीति का निश्चय करने से पूर्व दो बातों का ध्यान रखना होगा। पहली, अर्थव्यवस्था को विकास की अधिकतम दर प्राप्त करने के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयास करना पड़े। दूसरी, परिवर्तन की प्रक्रिया के लिए दीर्घावधि नहीं लगनी चाहिए।

भारत में विकास-रणनीति का उद्विकास (Evolution)

दूसरी पंचवर्षीय योजना के साथ भारतीय आयोजकों ने विकास की स्पष्ट रणनीति निर्माण की। प्रोफेसर महलनोबिस जो वस्तुत: दूसरी योजना के निर्माता समझे जाते हैं, ने रूसी अनुभव के आधार पर विकास की रणनीति निर्धारित की। इसमें तीव्र औद्योगीकरण प्राप्त करने के लिए भारी उद्योगों में विनियोग पर बल दिया गया जिसके परिणामस्वरूप बाद में तीव्र आर्थिक विकास की मूल परिस्थितियां कायम करने की आशा व्यक्त की गयी। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के अनुसार," भारी उद्योग का विकास औद्योगीकरण का पर्यायवाची है। उन्होंने कहा, "अहमदाबाद, मुम्बई या कानपुर में लगे हुए बहुत से सूती वस्त्र के कारखाने औद्योगीकरण नहीं हैं; यह तो केवल इसके साथ खिलवाड़ हैं। मैं सूती वस्त्र के कारखानों पर आपत्ति नहीं उठाना चाहता, हमें उनकी जरूरत है-परन्तु इस प्रकार हमारा औद्योगीकरण का विचार इन साधारण सूती वस्त्र के कारखानों तक ही सीमित एवं संकुचित हो जाता है और हम इसे ही औद्योगीकरण कहने लगते हैं। औद्योगीकरण से इस्पात उत्पन्न होता है, इससे संचालन शक्ति पैदा की जाती है, वे ही इसका आधार हैं। यदि आप एक बार आधार कायम कर लें, तो फिर निर्माण करना आसान हो जाता है। भारत में आयोजन को प्रशस्त करने वाली रणनीति में औद्योगीकरण को बढ़ावा देना होगा और इसका अर्थ यह है कि मूल उद्योगों को (Basic industries) प्रथम स्थान दिया जाए।[1]"

एक और सन्दर्भ में नेहरू ने कहा, "यदि हमें औद्योगीकरण करना है, तो सबसे अधिक महत्त्व की बात यह है कि हम सभी उद्योग कायम करें जो मशीनों का निर्माण करें।" फिर उन्होंने कहा, "कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि हमें भारी उद्योगों की बजाए हल्के उद्योगों (Light industries) का निर्माण करना चाहिए। नि:संदेह हमें हल्के उद्योगों का निर्माण तो करना ही है परन्तु राष्ट्र का तीव्र औद्योगीकरण तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक कि हम मूल उद्योगों की ओर ध्यान न दें जो औद्योगिक मशीनें उत्पन्न करते हैं जिनका प्रयोग औद्योगिक विकास में किया जाता है।"[2] अत: इस सम्बन्ध में नेहरू का दृष्टिकोण एकदम साफ था। औद्योगीकरण का अर्थ है भारी उद्योगों का विकास। दूसरी योजना के ढांचे में यह बात साफ शब्दों में इस प्रकार रखी गयी :

दीर्घकाल में, औद्योगीकरण और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास की दर सामान्यत: भारी उद्योगों के उत्पादन में वृद्धि, विशेषकर कोयले, बिजली, लौह एवं इस्पात और भारी मशीनों के उत्पादन में बढ़ोत्तरी पर निर्भर करेगी। इससे पूंजी निर्माण की क्षमता बढ़ेगी। हमारा एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य यह है कि भारत को विदेशी उत्पादक वस्तुओं (Producer goods) के आयात से शीघ्रातिशीघ्र स्वतन्त्र बनाना है ताकि पूंजी-संचयन (Capital accumulation) में अन्य देशों से प्राप्त की जाने वाली अनिवार्य उत्पादक वस्तुओं से सम्बन्धित कठिनाइयों के कारण बाधा उत्पन्न न हो। अत: भारी उद्योग को अधिकतम सम्भव रफ्तार से बढ़ाना होगा।

1. Government of India, *Problems in the Third Plan– A Critical Miscellany*, p. 35.
2. तत्रैव पृ. 34-35.

Scanned with CamScanner

अत: भारतीय आयोजकों द्वारा दूसरी योजना और उसके पश्चात् पांचवी योजना तक कुछ थोड़े बहुत फेरबदल के साथ अपनायी गयी विकास रणनीति का मूल इसी बात में था कि भारी, आधारभूत तथा मशीन निर्माण उद्योगों में विनियोग द्वारा तीव्र औद्योगीकरण किया जाए।

2. भारतीय विकास रणनीति का गुह्यार्थ (Implications of India's Strategy)

इस विनियोग रणनीति का उद्देश्य स्वयं-स्फूर्त विकास के लिए विनियोग की अधिकाधिक मात्रा मशीन-निर्माण उद्योग में स्थापित करने में लगाना था। इस विकास रणनीति की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

निर्यात प्रोत्साहन का कार्यभाग (Role of export promotion)

आरंभ में अपनी पूंजी वस्तुओं सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए योजना आयोग ने विदेशी सहायता का काफी आश्रय लिया क्योंकि हमारी विदेशी मुद्रा सम्बन्धी प्राप्तियां अपर्याप्त थीं। परन्तु 1956-57 के विदेशी मुद्रा संकट (Foreign exchange crisis) के पश्चात् निर्यात- प्रोत्साहन का महत्त्व ठोक प्रकार से समझा गया। आयोजकों ने यह बात समझ ली कि निर्यात प्रोत्साहन तीव्र औद्योगीकरण की क्रिया में साथ-साथ चल सकते हैं। तीसरी योजना में इस बात को इस प्रकार स्पष्ट किया गया : "बीते वर्षों में एक मुख्य कमजोरी यह रही है कि निर्यात के प्रोग्राम को देश के विकास-प्रयास का एक समन्वित भाग नहीं समझा गया।"[3] योजना आयोग इस बात से बाद में पीछे नहीं हटा–निर्यात-प्रोत्साहन उत्तरोत्तर पंचवर्षीय योजनाओं का हमेशा ही एक महत्त्वपूर्ण पहलू रहा है और पांचवी योजना ने तो इससे भी आगे बढ़कर शुद्ध विदेशी सहायता को शून्य दर का लक्ष्य रखा। निर्यात प्रोत्साहन के साथ-साथ आयात प्रतिस्थापन (Import substitution) पर भी बल दिया गया।

उपभोग वस्तुओं का संभरण–नेहरू युग के आयोजन की दृष्टि इस सम्बन्ध में बिल्कुल साफ थी कि भारी उद्योगों का विकास परिवार क्षेत्र में उपभोग-वस्तुओं की विकास-दर से सीमित हो जाएगा। दूसरी योजना के ढांचे (Framework) में यह बात स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कही गयी : "उपभोग वस्तुओं का जितनी मात्रा में अधिक विपण्य अतिरेक (Marketable surplus) परिवार या हस्तशिल्प उद्योगों में होगा, उतनी ही हद तक बिना स्फीति के डर से भारी उद्योगों में विनियोग हो सकेगा।"[4]

एक बात तो यह है कि बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए भोजन एवं वस्त्र का प्रबन्ध करना पड़ता है और इस प्रकार जनसंख्या में वृद्धि के साथ उपभोग वस्तुओं की मांग बढ़ जाएगी। दूसरे, भारी उद्योगों जिनकी परिपाक अवधि (Gestation period) लम्बी होती है, में विनियोग की बढ़ती हुई दर के कारण सामान्य जनता के पास मुद्रा-संभरण (Money supply) में वृद्धि होती है और उपभोग वस्तुओं की तुलनीय पूर्ति (Matching supply) के अभाव में स्फीतिकारी दबाव (Inflationary pressure) उत्पन्न होंगे। नेहरू-महलनोबिस मॉडल (Nehru Mahalanobis Model) में उपभोग वस्तुएं उत्पन्न करने वाले कुटीर उद्योगों को सक्रिय प्रोत्साहन दिया गया। यह तर्क दिया गया कि छोटे तथा कुटीर उद्योगों में आदान-प्रदान अनुपात (Input-output ratio) नीचा होगा और परिपाक अवधि लगभग शून्य होगी और जाहिर है कि लघु-क्षेत्र उपभोग वस्तुओं के संभरण को बढ़ाने के लिए सबसे उपयुक्त रहेगा। इसके अतिरिक्त प्रोफेसर महलनोबिस ने तर्क दिया कि लघु तथा कुटीर क्षेत्र में उत्पादन की लागत जरूरी नहीं कि फैक्टरी क्षेत्र से अधिक हो क्योंकि लघु-क्षेत्र भी आधुनिक मशीनरी एवं बिजली का प्रयोग करेगा। उपभोग-वस्तुओं के संभरण को बढ़ाने वाले इन सभी कारणतत्त्वों के बावजूद प्रोफेसर महलनोबिस ने उपभोग वस्तुओं की कमी की प्रत्याशा नहीं की और न ही इस परिस्थिति को लागतों एवं कीमतों में वृद्धि के कारण आयोजन-प्रक्रिया के प्रति एक खतरा समझा। अपनी विकास रणनीति में, उन्होंने राजकोषीय नियन्त्रणों (Fiscal controls) जिनमें राशनिंग भी शामिल था, की व्यवस्था की ताकि कीमतों की वृद्धि रोकी जा सके।

नेहरू ने भी छोटे पैमाने के उद्योगों और कृषि को उचित महत्त्व दिया क्योंकि वे उपभोग वस्तुओं के स्रोत थे। नेहरू के शब्दों में, "किसी देश में औद्योगीकरण की प्रगति की कसौटी भारी उद्योग की स्थापना है, न कि छोटे उद्योगों की। इसका यह अर्थ नहीं कि छोटे उद्योगों की उपेक्षा होनी चाहिए। वे भी अपने आप में बहुत महत्त्व रखते हैं, विशेषकर उत्पादन और रोजगार की दृष्टि से।" दूसरी पंचवर्षीय योजना के ढांचे (Framework) मे उल्लेख किया गया : "विकास रणनीति यह आवश्यक समझती है कि वर्तमान उद्योगों में क्षमता के अधिकतम उपयोग के लिए पूरा प्रयास किया जाना चाहिए और इस प्रकार का भरसक प्रयास पूंजी की दृष्टि से हल्के या लघु-क्षेत्र के उद्योगों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए भी किया जाना चाहिए।"[5] कृषि के सम्बन्ध में नेहरू ने उल्लेख किया: "हम यह अनुभव करेंगे कि यह औद्योगिक प्रगति, कृषि में प्रगति और तरक्की किए बिना प्राप्त नहीं की जा सकती। हर व्यक्ति यह बात समझता है

3. योजना आयोग, तृतीय पंचवर्षीय योजना
4. *Second Fiver Year Plan* — p. 15.
5. *Ibid.*, p. 63.

Scanned with CamScanner

कि जब तक हम कृषि में आत्मनिर्भर नहीं हो जाते, तब तक हमें उद्योगों में प्रगति करने के साधन उपलब्ध नहीं होंगे। यदि हमें खाद्यान्न का आयात करना है, तो प्रगति की दृष्टि से भविष्य अन्धकारमय ही रहेगा। हम खाद्यान्न और मशीनरी दोनों का आयात नहीं कर सकते।" दूसरी योजना के ढांचे में भी उल्लेख किया गया: "चूंकि उपभोग वस्तुओं की अतिरिक्त मांग का अधिकतर भाग खाद्यान्न के रूप में होगा, इसलिए ऐसी योजनाओं को अपनाने की ओर ध्यान देना चाहिए जो पूंजी की कम लागत पर कृषि की उत्पादिता को तेजी से बढ़ाएं।"[6]

जाहिर है कि स्वयं-स्फूर्त विकास की रणनीति, जो भारी उद्योगों पर आधारित थी, में कृषि में आत्मनिर्भरता की आवश्यकता और उपभोग वस्तुओं के संभरण को बढ़ाने के लिए लघु स्तर उद्योगों के महत्त्व पर बल दिया गया। परन्तु यह सोचा गया कि पहली योजना में इतनी सफलता प्राप्त हुई है कि भारत कृषि के सम्बन्ध में पहले ही आत्मनिर्भर हो गया है। 1965-66 के बाद ही देश ने यह अनुभव किया कि खाद्यान्नों का संभरण अपर्याप्त है।

बचत का कार्यभाग- बचत के कार्यभाग के सम्बन्ध में विनियोग रणनीति में यह कल्पना की गई कि भारत को केवल घरेलू बचत (Domestic saving) पर निर्भर नहीं करना चाहिए। इसमें घरेलू बचत की दर बढ़ाने की आवश्यकता पर बल दिया गया परन्तु चूंकि यह महसूस किया गया कि घरेलू बचत विनियोग की ऊंची दर के लिए काफी नहीं होगी, इसलिए आयोजकों ने विदेशी सहायता की व्यवस्था की। विकास-रणनीति में यह बात स्वीकार की गयी कि विदेशी सहायता आरम्भिक काल में विदेशी पूंजी एवं परिमार्जित तकनालाजी के आयात के लिए ली जानी चाहिए और धीरे-धीरे देश को विदेशी सहायता से मुक्त करना होगा ताकि आत्मनिर्भरता का लक्ष्य प्राप्त हो सके।

सार्वजनिक क्षेत्र का कार्यभाग (Role of public sector)–विनियोग रणनीति में सार्वजनिक क्षेत्र को प्रधान कार्यभाग सौंपा गया। चूंकि भारी उद्योगों में विनियोग बहुत ऊंचा रखा गया और इस विनियोग की परिपाक अवधि (Gestation period) लम्बी थी परन्तु इससे प्राप्त होने वाली लाभ-दर नीची थी, सरकार ने यह सोचा कि जहां तक हो सके भारी उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में ही स्थापित करने चाहिएं। केवल कुछ गिनी-चुनी परिस्थितियों को छोड़कर निजी क्षेत्र आधारसंरचना (Infrastructure) स्थापित करने का इच्छुक नहीं था। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र के नियन्त्रण द्वारा अर्थव्यवस्था की बागडोर सरकार के हाथों आ जाएगी और यह अर्थव्यवस्था के विकास की दृष्टि से ठीक होगा। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र आय के पुनर्वितरण एवं एकाधिकारी स्वामित्व एवं शोषण को रोकने में सहायता देगा जो कि निजी क्षेत्र में अन्तर्निहित है। यही कारण था कि दूसरी योजना के आरम्भ के पश्चात् सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र का बड़े पैमाने पर विकास किया।

विकास रणनीति का औचित्य-उद्योग बनाम कृषि

दूसरी योजना और उत्तरोत्तर योजनाओं में अपनाए गए नेहरू-महलनोबिस मॉडल की काफी आलोचना की गयी। आलोचना का एक मुख्य आधार यह था कि कृषि की तुलना में उद्योगों पर अत्यधिक बल दिया गया। आयोजकों ने उद्योगों को उच्च प्राथमिकता देने की नीति को कई दृष्टियों से उचित ठहराया।

(क) राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय की तीव्र वृद्धि केवल तीव्र औद्योगीकरण द्वारा ही संभव हो सकेगी।

(ख) उद्योगों में विकास दर कृषि की तुलना में कहीं अधिक थी।

(ग) औद्योगिक वस्तुओं की मांग की आय लोच (Income elasticity) बहुत अधिक है और निर्मित वस्तुओं में निर्यात के अवसर भी बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध हो सकते हैं।

इस प्रकार तीव्र आर्थिक विकास के लिए तीव्र औद्योगीकरण एक उपाय के रूप में कल्पित किया गया। यह सोचा गया कि देश के दुर्लभ साधनों का प्रयोग कृषि की अपेक्षा उद्योगों के विकास की ओर होना चाहिए। उद्योगों को प्राथमिकता देने का एक और कारण भी था। भारतीय कृषि पहले ही जनसंख्या के अत्यधिक दबाव और निम्न उत्पादिता (Low productivity) से पीड़ित थी। भूमि पर दबाव को कम करने और कृषि उत्पादित को बढ़ाने का एक उपाय अतिरिक्त जनसंख्या के उद्योगों की ओर परिवर्तित करना था। उद्योगों में रोजगार की वृद्धि और ऊँची उत्पादिता के फलस्वरूप राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय की अधिक वृद्धि होगी, यदि कृषि की अपेक्षा उद्योगों में अधिक विनियोग किया जाए।

ब्रिटिश शासन के दौरान, भारत को कृषि तथा कृषि पर आधारित उद्योगों तक सीमित रहने के लिए मजबूर किया गया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय भारत मूलत: एक कृषि-प्रधान देश था, चाहे अपने विस्तृत प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों के आधार पर यह औद्योगीकरण के लिए अत्यन्त उपयुक्त था। आयोजकों ने सोचा कि उत्पादन, रोजगार एवं प्रतिरक्षा की दृष्टि से संसाधनों के प्रयोग का विशाखन (Diversification) देश के हित में होगा। इन तर्कों के आधार पर आयोजकों ने दूसरी योजना से औद्योगीकरण पर बल दिया।

6. *Ibid.*, p. 63.

Scanned with CamScanner

क्या कृषि की वास्तव में उपेक्षा की गयी ?

यह तो ठीक है कि भारी उद्योगों द्वारा औद्योगीकरण को प्राथमिकता दी गयी परन्तु यह कहना कि कृषि की उपेक्षा की गयी ठीक नहीं है। कृषि और उद्योग की पूरकता (Complementarity) के सम्बन्ध में नेहरू का नजरिया बिल्कुल साफ था। नेहरू ने लिखा, "हमें यह बात समझनी होगी कि कृषि की उन्नति एवं प्रगति के बिना औद्योगिक प्रगति प्राप्त नहीं की जा सकती। वस्तु-स्थिति तो यह है कि इन दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। इनमें गहरा सम्बन्ध है क्योंकि कृषि की प्रगति उद्योग की प्रगति के बिना सम्भव नहीं। कारण यह है कि इसके लिए नये औजार, नयी विधियां और नयी तकनीकें चाहिएं।"

अत: नेहरू पर यह दोष लगाना कि वह राष्ट्रीय विकास के सन्दर्भ में कृषि के कार्यभाग के बारे में जागरूक नहीं था, ठीक नहीं। न ही यह दोष देश के आयोजकों पर लगाया जा सकता है। नेहरू इस बात को पूरी तरह समझता था कि कृषि को विकसित करने में विफलता 'औद्योगिक प्रगति' पर एक सीमाबन्धन बन जाएगी।

तब भी उद्योग पर बल को सामान्यत: कृषि की उपेक्षा के रूप में समझा गया और यह आरोप लगाया गया कि कृषि की ओर कम ध्यान दिया गया। अन्यथा हम इस बात की व्याख्या किस प्रकार कर सकते हैं कि कृषि तथा सम्बन्धित व्यवसाय जो राष्ट्रीय आय में 42 से 52 प्रतिशत तक योगदान देते हैं, पर पहली पांच योजनाओं में लगभग 20 प्रतिशत संसाधन (Resources) व्यय किए गया, जबकि उद्योग जो कि राष्ट्रीय आय का केवल 18 से 20 प्रतिशत उपलब्ध कराते हैं, को कुल संसाधनों का 24 प्रतिशत विनियोग के रूप में उपलब्ध कराया गया। जाहिर है कि व्यवहार में उद्योगों को कहीं अधिक ऊँची प्राथमिकता दी गयी और इस प्रकार कृषि की उपेक्षा की गयी। चरणसिंह जो नेहरू की औद्योगीकरण की धारणा के कटु-आलोचक थे, ने लिखा : "भारत के भविष्य के निर्माण के आयोजकों का 'बुनियादी गुनाह' यह था कि उन्होंने कृषि की उपेक्षा की।"[7] साम्यवादी मार्ग को अपनाते हुए, कृषि की उपेक्षा करके भारी उद्योग का विकास किया गया। व्यापार-अर्ध (Terms of trade) कृषि के विरूद्ध परिवर्तित किए गए और खाद्यान्न एवं कच्चे माल के रूप में कृषि अतिरेक (Agricultural surplus) का प्रयोग आधारसंरचना (Infrastructure) विनियोग में वित्त जुटाने के लिए किया गया। चरणसिंह ने लिखा : "साम्यवादी भाषा में, किसान वर्गों को गैर-कृषि क्षेत्र के पोषक आधार (Nutrient base) का काम करना अनिवार्य है या आर्थिक विकास के लिए कीमत अदा करनी है।"[8]

इस विरोधाभास को सुलझाने के लिए तीन तर्क दिए जाते हैं। प्रथम, आयोजकों ने यह महसूस किया कि पहली योजना की सफलता के साथ भारत कृषि में आत्मनिर्भर हो गया और भारतीय कृषि की स्वावलम्बिता बनाए रखने के लिए इस पर कुल व्यय का कम प्रतिशत आबंटन ही पर्याप्त हो। दूसरे, यह सोचा गया कि आधारसंरचना सुविधाओं (Infrastructural facilities) जैसे संचालन शक्ति, परिवहन आदि और उद्योगों एवं उनके विकास के परिणामस्वरूप बिजली, औजारों, उर्वरकों आदि की व्यवस्था से कृषि का विकास होगा। तीसरे, कुछ ऐसे संसाधनों के लिए जिनकी किसानों को आवश्यकता पड़ती है, के सम्बन्ध में कृषि एवं उद्योगों में कोई वास्तविक प्रतियोगिता नहीं। उदाहरणार्थ कृषि में स्थानीय माल और मानव शक्ति की आवश्यकता पड़ती है जबकि उद्योगों में पूंजी, तकनीकी ज्ञान और प्रशिक्षित श्रम की जरूरत होती है। यह स्वाभाविक है कि संसाधनों के उच्च आबंटन (Allocation) और उद्योगों की अपेक्षाकृत उच्च प्राथमिकता का अनिवार्य रूप में यह अर्थ नहीं कि कृषि को नीची प्राथमिकता देनी चाहिए या यह प्राथमिकता कृषि की कीमत पर दी जाए।

भारी उद्योग बनाम हल्के उद्योग (Heavy Industries versus Light Industries)

विनियोग रणनीति का दूसरा पक्ष जिस पर काफी आलोचना हुई है, भारी उद्योगों (अर्थात् भारी मशीनों एवं आधारभूत धातुओं) पर बल देना है और हल्के उद्योगों की उपेक्षा करना है। योजना आयोग ने इस विकास रणनीति का दो कारणों के आधार पर समर्थन किया है। पहला, भारी उद्योग क्षेत्र में विनियोग की सहायता से भारतीय अर्थव्यवस्था में पूंजी स्टाक की एक भारी मात्रा निर्माण करने में सहायता मिलती है और यह तेजी से किया जाता है। दूसरे, भारी उद्योगों की सहायता से एक मजबूत स्वयं स्फूर्त अर्थव्यवस्था की नींव रखी जा सकती है, ऐसा एक ओर तो अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों के तीव्र विस्तार से होता है और दूसरी ओर देश की अनिवार्य मशीनरी एवं उपकरणों के लिए आयात पर निर्भरता को कम करके। योजना आयोग ने हल्के उद्योगों द्वारा उपभोग वस्तुएं उत्पन्न करने की दूसरी विकास रणनीति रद्द कर दी। इसमें सन्देह नहीं कि वैकल्पिक विकास रणनीति के कारण अर्थव्यवस्था को उपभोग वस्तुओं की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा उत्पन्न करने में सहायता मिल सकती है और इसके फलस्वरूप अल्पकाल में लोगों को ऊंचा जीवन-स्तर

7. Charan Singh, *India's Economic Policy*, p.90.

8. तत्रैव पृ. 40.

Scanned with CamScanner

उपलब्ध कराया जा सकता है और इससे स्फीतिकारी दबावों को भी कम किया जा सकता है। परन्तु यह देश में पूंजी संचयन की उपेक्षा करके किया जा सकता है। परन्तु योजना आयोग ने अल्पकाल में उपभोग वस्तुओं की कम उपलब्धि को स्वीकार कर लिया और पूंजी वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने की रणनीति अपनायी जिसके फलस्वरूप यह आशा की गयी कि एक विशेष अवधि के पश्चात उपभोग वस्तुओं की अधिक मात्रा प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। रूसो अनुभव के आधार पर पूंजी वस्तु प्रधान विकास ने जनता से यह आशा की कि वह एक सुन्दर और खुशहाल दीर्घकाल के लिए अल्पकाल का परित्याग करे। इसके अतिरिक्त इस रणनीति के फलस्वरूप अल्पकाल में पूंजी वस्तुओं की अधिक मात्रा उपलब्ध होगी और दीर्घकाल में भी पूंजी और उपभोग वस्तुओं की अधिक मात्रा प्राप्त होगी।

भारी और हल्के उद्योगों के सम्बन्धों में भारत में बड़ा तीखा विवाद रहा है। जबकि नेहरू भारी उद्योगों को ही औद्योगीकरण के पर्यायवाची समझता था और इसलिए नेहरू युग में हल्के उद्योगों, लघु उद्योगों, लघु-स्तर एवं कुटीर उद्योगों को कम महत्त्व दिया गया, आलोचकों ने इस विकास-रणनीति की कुछ कमजोरियां बतायी हैं और भारतीय परिस्थितियों में इस विकास-रणनीति की अनुपयुक्तता का उल्लेख किया है। पहली, भारी उद्योगों के कारण विनियोग के ऐसे ढांचे की आवश्यकता अनुभव हुई जिसके परिणामस्वरूप मशीनरी और तकनीक की उपलब्धि के लिए विदेशों पर निर्भरता बढ़ गयी। इससे भुगतान शेष (Balance of Payments) भारी मात्रा में प्रतिकूल हो गया और परिणामस्वरूप योजना-परिव्यय को कुछ हद तक काटना पड़ा। दूसरे, भारत को जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव का सामना करना है जिसके परिणामस्वरूप देश में भारी बेरोजगारी उत्पन्न होती है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि श्रम-प्रधान उद्योगों में विनियोग किया जाए। जबकि भारी तथा मूल उद्योगों के महत्त्व को कम करके आंकना उपयुक्त नहीं, किन्तु वस्तु-स्थिति यह है कि चूंकि ये उद्योग पूंजी-प्रधान होते हैं, इसलिए ये पर्याप्त मात्रा में रोजगार कायम नहीं कर पाते। परिणामत: हम उपभोग वस्तु उद्योगों को विकसित करने के लिए मजबूर हो जाते हैं, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, ताकि रोजगार के अधिक अवसर कायम किए जाएं। तीसरी बात यह है कि आयोजन प्रक्रिया (Planning process) बहुत असंतुलित रही-यह उत्पादन-प्रेरित (Production oriented) तो बनी, परन्तु रोजगार-प्रेरित (Employment oriented) न बन सकी। राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय में कुछ वृद्धि हुई और भारत विश्व का दसवां औद्योगिक देश बन गया है परन्तु इसके साथ-साथ देश में बेरोजगारी में वृद्धि हुई है, अधिक जनसंख्या निर्धनता स्तर के नीचे बनी रही और आय की असमानताएं बढ़ीं; यह 'अन्याय के साथ विकास' की स्थिति कायम रही।

भारी उद्योग रणनीति के समर्थकों के अनुसार भारत की अधिकतर कठिनाइयां कृषि में विफलता के कारण उत्पन्न हुईं। उनका कहना है कि कृषि में वृद्धि दर उतनी नहीं हुई जितनी कि प्रत्याशा थी और इस विफलता के कारण जनता को खाद्यान्नों की उपलब्धि कम हो गयी जिसके परिणामस्वरूप स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न हो गए। वे वर्तमान स्थिति के लिए कृषि में विफलता को उत्तरदायी मानते हैं, न कि भारी उद्योग विधि के चुनाव को।

इसके अतिरिक्त, ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारी उद्योग विकास रणनीति के समर्थक लघु स्तर एवं कुटीर उद्योगों के विरुद्ध नहीं हैं। परन्तु उनका कहना है कि उपभोग वस्तु उद्योग एवं श्रम-प्रधान लघु स्तर एवं कुटीर उद्योग तब तक विकसित नहीं किए जा सकते जब तक कि परिवहन एवं संचार, बिजली आदि के रूप में सामाजिक उपरिव्यय (Social overheads) स्थापित नहीं किए जाते। अत: सामाजिक एवं आर्थिक उपरिव्यय में विनियोग रोजगार अवसरों के सफल विस्तार की शर्त है।

संतुलित विकास (Balanced growth) भारत का लक्ष्य

ऊपर दिए गए विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास के लिए जो उद्देश्य स्वीकार किया गया एवं अपनाया गया, वह संतुलित विकास (Balanced growth) और व्यापक आयोजन (Comprehensive planning) का था, न कि किसी विशेष क्षेत्र के विस्तार का। पहली योजना में विकास-रणनीति को स्पष्ट करते हुए यह उल्लेख किया गया : "कृषि जिसमें सिंचाई शामिल है, और संचालन-शक्ति को सर्वोच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए। परन्तु खाद्यानों के उत्पादन और उद्योग के लिए आवश्यक कच्चे माल के उत्पादन में काफी वृद्धि किए बिना, औद्योगिक विकास की तीव्र गति कायम रखनी संभव नहीं होगी। इनमें से कोई एक दूसरे के बिना बहुत आगे नहीं बढ़ सकता। किन्तु यह आर्थिक एवं अन्य कारणों के आधार पर भी आवश्यक है-सबसे पहले अर्थव्यवस्था के आधार को मजबूत बनाना होगा और खाद्यान्नों एवं कच्चे माल के सम्बन्ध में स्वावलम्बिता की ही नहीं, बल्कि प्रचुरता की स्थिति पैदा करनी होगी। भारत के विविध संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में, विकास का संतुलित ढांचा प्राप्त करने की अनुकूल परिस्थितियां विद्यमान हैं।"[9]

9. Planning Commission, *The First Five Year Plan*, p.1.

Scanned with CamScanner

दूसरी योजना में पूंजी-वस्तु क्षेत्र को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए यह उल्लेख किया गया : "भारत में सार्वजनिक नीति और राष्ट्रीय प्रयास का केन्द्रीय उद्देश्य द्रुत एवं संतुलित आर्थिक विकास प्रोन्नत करना है।"[10] इसमें यह भी कहा गया: "राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के निरन्तर विकास के लिए यह आवश्यक है कि समस्त अर्थव्यवस्था का एक साथ विकास हो।"[11] परन्तु आयोजकों की यह कल्पना सही सिद्ध नहीं हुई। इसका यह अर्थ नही कि संतुलित विकास का उद्देश्य ही मूलत: दोषपूर्ण है बल्कि इसका अर्थ यह है कि मोटे तौर पर क्षेत्रीय प्राथमिकताओं (Sectoral priorities) को निर्धारित करने के पश्चात् प्रत्येक क्षेत्र के भीतर गम्भीर रूप में प्राथमिकताएं तय नहीं की गयीं। भारत जैसी बड़ी अर्थव्यवस्था के लिए, जिसमें सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के सह-अस्तित्व के साथ आंशिक आयोजन (Partial planning) और लोकतन्त्रीय राजनीतिक ढांचा स्वीकार किया गया हो, संतुलित विकास को ही अपनाना अनिवार्य है। जैसा कि प्रोफेसर ल्यूइस ने लिखा है : "विकास योजनाओं में अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास होना चाहिए ताकि कृषि एवं उद्योग के बीच अभिदृश्य उपभोग (Conspicuous consumption) एवं निर्यात के लिए उत्पादन के बीच सन्तुलन कायम हो सके। सत्य तो यह है कि सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास होना चाहिए; यह धारणा जितनी सरल है उतनी ही युक्तिपूर्ण है और इसे झुठलाया नहीं जा सकता।"[12]

3. विकास का गांधीवादी बनाम नेहरूवादी मॉडल
(Models of Development : Gandhian vs. Nehruvian)

जनता पार्टी के सत्ता में आने से पूर्व 1977 तक भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास का आधार नेहरू की निवेश रणनीति (Investment strategy) थी और इसी कारण इसे विकास का नेहरू मॉडल कहा जाता है। नेहरू मॉडल में भारी उद्योग को अर्थव्यवस्था का आधार माना गया और नेहरू यह चाहते थे कि अर्थव्यवस्था की बुनियाद मजबूत की जाए ताकि विदेशी सहायता पर निर्भरता कम की जा सके। एक मजबूत बुनियाद प्रतिरक्षा की दृष्टि से भी महत्त्व रखती है क्योंकि इसके बिना आर्थिक विकास का प्रश्न ही नहीं उठता। नेहरू की विकास रणनीति के फलस्वरूप भारत विश्व के औद्योगीकृत राष्ट्रों में दसवां स्थान प्राप्त कर सका। हमारी पहली पांच योजनाओं के दौरान हुई प्रगति के बारे में छठी योजना के प्रारूप ने लिखा : "यह वस्तुत: बड़े राष्ट्रीय गर्व की बात है कि इस काल के दौरान, एक अवरुद्ध एवं पराश्रित अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण किया गया और इसे अधिक आत्मनिर्भर बनाया गया।"[13] नेहरू विकास मॉडल की अन्य विशिष्ट उपलब्धियां निम्नलिखित हैं-

(क) बीज-खाद तकनालाजी के प्रयोग से कृषि उत्पादिता (Agricultural productivity) में भारी वृद्धि जिसके फलस्वरूप देश खाद्यान्नों के बारे में आत्मनिर्भर हो गया और खाद्यान्नों के भारी रक्षित भंडार इकटठे हो गए;

(ख) पूंजी वस्तु क्षेत्र में कारगार औद्योगीकरण और इसके लिए सार्वजनिक क्षेत्र को प्रमुख कार्यभाग अदा करना पड़ा। इससे भारत की औद्योगिक क्षमता का विस्तार एवं विशाखन हुआ। भारत अब उपभोग वस्तुओं में और मूल वस्तुओं अर्थात् इस्पात, सीमेंट में आत्मनिर्भर है जबकि नये उद्योगों अर्थात् उर्वरकों की क्षमता का तेजी से विस्तार हो रहा है ;

(ग) सिंचाई, संचालन शक्ति, परिवहन एवं संचार आदि के रूप में आर्थिक आधारसंरचना का विकास जो कि द्रुत आर्थिक विकास के लिए आधार मुहय्या कर सकता है; और

(घ) एक आधुनिक औद्योगिक ढांचे को चलाने के लिए विज्ञान एवं तकनॉलाजी का विकास और तकनीकी एवं प्रबन्धकीय संवर्गों (Technical and managerial cadres) की स्थापना एवं विकास।

नेहरू विकास मॉडल की कमजोरियां

भारी उद्योग पर आधारित नेहरू विकास मॉडल में कई कमजोरियां अनुभव की गयीं। लगभग तीन दशकों के आयोजन के बावजूद, यह राष्ट्रीय न्यूनतम जीवन-स्तर उपलब्ध कराने में असफल रहा। 40 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या अब भी निर्धनता स्तर के नीचे रह रही थी। बेरोजगार और अल्परोजगार व्यक्तियों की संख्या बहुत ज्यादा थी और यह लगातार बढ़ रही थी। आय तथा सम्पत्ति की असमानताएं और गम्भीर होती जा रही थी और कुछ लोगों के हाथों में आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण बढ़ता जा रहा था। भू-सुधारों को सही ढंग से लागू नहीं किया गया और इस कारण ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत अधिक असंतोष है। इन सबके अतिरिक्त देश में कभी एक और कभी दूसरी वस्तु का अभाव बना रहता है और इसके परिणामस्वरूप देश में एक भयंकर स्फीतिकारी दबाव पैदा हो गया है। इन परिस्थितियों को

10. Planning Commission, *The Second Five Year Plan*, p.1.
11. *Ibid*, p.2.
12. W.A. Lewis, *The Theory of Economic Growth*, p.283.
13. Planning Commission, *Draft Five Year Plan* (1978-83), p. 1.

Scanned with CamScanner

देखते हुए श्री चरण सिंह जैसे कुछ राजनीतिज्ञों ने तथाकथित 'आर्थिक विकास के गांधीवादी मॉडल' के प्रयोग का समर्थन किया।

विकास का गांधीवादी मॉडल

महात्मा गांधी कोई प्रशिक्षित अर्थशास्त्री नहीं थे और इसलिए उन्होंने विकास का कोई मॉडल तैयार नहीं किया। परन्तु, उन्होंने भारतीय कृषि, उद्योग आदि के विकास के लिए कुछ नीतियों का समर्थन अवश्य किया। आचार्य श्रीमन नारायण ने 1944 में गांधीवादी योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की और बाद में 1948 में उसकी पुष्टि की। ये प्रकाशन गांधीवादी आयोजन या विकास के गांधीवादी ढांचे का आधार हैं।

गांधीवादी योजना का मूल उद्देश्य यह है कि भारतीय जनता के भौतिक एवं सांस्कृतिक स्तर को उन्नत किया जाए ताकि 10 वर्षों के अन्दर न्यूनतम जीवनस्तर प्राप्त किया जा सके। गांधीवादी योजना सबसे पहले भारत के 5 लाख गांवों की आर्थिक दशा उन्नत करना चाहती है और इसलिए कृषि के वैज्ञानिक विकास और कुटीर उद्योगों के विस्तार पर बल देती है।

कृषि

गांधीवादी योजना का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य भारतीय आर्थिक आयोजन में कृषि-सुधार को बढ़ावा देना है। कृषि विकास का मुख्य लक्ष्य खाद्यान्नों में राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता और खाद्य-पदार्थों में अधिकतम क्षेत्रीय स्वावलम्बिता प्राप्त करना है। इसकी प्राप्ति के लिए न केवल बड़ी मात्रा में अच्छे कृषि-आदानों का प्रयोग आवश्यक है बल्कि भू-सुधारों का प्रयोग भी करना होगा। इसके लिए काश्तकारी प्रणाली में परिवर्तन, भू-स्वामित्व अधिकारों का उन्मूलन, जोतों की चकबन्दी, सहकारी समितियों का गठन आदि उपाय इस्तेमाल करने होंगे। महाजन-व्यवस्था को समाप्त करना होगा और किसानों को अधिक मात्रा में ऋण सुविधाएं प्रदान करनी होंगी। गांधीवादी योजना में डेरी उद्योग (Dairy farming) पर विशेष बल दिया गया और इसे कृषि का एक सहायक व्यवसाय माना गया।

कुटीर उद्योग

गांधीवादी योजना का मुख्य उद्देश्य ग्राम समाज में अधिकतम आत्मनिर्भरता प्राप्त करना है। इसलिए इस योजना में कुटीर उद्योगों के पुनःस्थापन, विकास एवं विस्तार की समस्याओं का कृषि के साथ-साथ सविस्तार वर्णन किया गया। कताई एवं बुनाई को प्रथम स्थान दिया गया। यह उल्लेख किया गया कि खादी के उत्पादन को उतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिए जितना कि चावल और गेहूं के उत्पादन को दिया जाता है। "जैसे गांवों के लोग अपनी रोटी और चावल बनाते हैं, उसी प्रकार उन्हें अपने निजी प्रयोग के लिए खादी तैयार करनी चाहिए। यदि वे अपनी आवश्यकता से अधिक पैदा करते हैं, तो इस अतिरेक को बेच सकते हैं।" गांधीवादी योजना में प्रत्येक गांव को कपड़े के उत्पादन में स्वावलम्बी बनाने की योजना दी गई है। इसके लिए प्रत्येक ग्रामवासी से यह आशा की जाती है कि वह ग्राम उद्योगों के विकास एवं गठन में सक्रिय भाग अदा करे। इसके साथ-साथ गांधीवादी योजना राज्य से यह अपेक्षा करती है कि वह ग्रामीण कुटीर उद्योगों के पुनरुत्थान एवं विकास को औद्योगिक आयोजन का मुख्य केन्द्र बनाए। इसे दस्तकारों को हस्तशिल्पों के सम्बन्ध में तकनीकी प्रशिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध करानी होंगी; कच्चे माल के क्रय और तैयार माल के विक्रय के लिए सहकारी समितियां कायम करनी होंगी, कुटीर उद्योगों को बड़े पैमाने की इकाइयों की अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध सुरक्षा देनी होगी, और कुछ ऐसे कुटीर उद्योगों को साहाय्य (Subsidies) देने होंगे जो इसके बिना विकसित ही नहीं हो सकते और साथ ही दस्तकारों एवं सहकारी समितियों को सस्ती दर पर वित्त उपलब्ध कराना होगा।

मूल उद्योग (Basic Industries)

गांधीजी के बारे में एक मिथ्या धारणा बनी हुई है कि वे बड़े पैमाने के उद्योगों के विरुद्ध थे। इसके विरुद्ध गांधीवादी योजना में कुछ चुने हुए मूल एवं कुंजी उद्योगों की आवश्यकता एवं महत्त्व को स्वीकार किया गया है। इनमें उल्लेखनीय हैं—प्रतिरक्षा उद्योग, जल-विद्युत एवं तापीय संचालन-शक्ति प्रजनन, खानें तथा धातुकर्म, मशीनरी एवं मशीनी औजार, भारी इंजीनियरिंग और भारी रसायन। गांधीवादी योजना यह चाहती है कि मूल उद्योगों का विकास कुटीर उद्योगों के विकास में हस्तक्षेप न करे या इनमें बाधा न बने। गांधीवादी योजना का सबसे अधिक वैज्ञानिक पहलू यह है कि मूल तथा कुंजी उद्योगों का स्वामित्व एवं प्रबन्ध राज्य के हाथ में होना चाहिए या दूसरे शब्दों में, ये उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित होने चाहिए।

गांधीजी की मशीनरी की धारणा के बारे में काफी गलतफहमी है। साधारणतया, लोग यह समझते हैं कि गांधीजी का कुटीर उद्योगों एवं हस्तशिल्पों पर बल देना उनके आधुनिक मशीनरी के प्रति विरोध का संकेत है। यह गलत है। गांधीजी सभी प्रकार की मशीनरी के विरुद्ध नहीं थे क्योंकि चरखा भी एक प्रकार की मशीन है। किन्तु गांधीजी मशीनरी की सनक और इसके अन्धाधुन्ध विस्तार के विरुद्ध थे। उनका विश्वास था कि कारखाना पद्धति, मशीनरी का विस्तृत प्रयोग करके, कुछ पूंजीपतियों द्वारा श्रम के

Scanned with CamScanner

शोषण का साधन बन गयी है। वे मशीनरी और आधुनिक सुविधाओं का स्वागत करते थे परन्तु शर्त यह है कि इनके प्रयोग से ग्रामीणों का भार हल्का होना चाहिए और मानवीय श्रम का विस्थापन नहीं होना चाहिए। मशीनरी अच्छी है यदि यह सबके हित को प्रोन्नत करती है; यह एक अभिशाप है यदि यह कुछ लोगों के हित को बढ़ाती है।

यदि हम गांधीवादी योजना का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करें, तो हमें पता चलता है कि इसका उद्देश्य कृषि एवं उद्योगों का साथ-साथ विकास करना है और इनमें समन्वय स्थापित करना है। हस्तशिल्पों और कुटीर उद्योगों पर बल देने का उद्देश्य उत्पादन के साथ-साथ रोजगार का भी विस्तार करना है। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् भारतीय समाज पर नेहरूजी छा गये थे और गांधीजी तथा उनके आर्थिक विचार भुला दिए गए। इनकी अपेक्षा रूसी अनुभव के आधार पर भारतीय आयोजन का मॉडल लागू कर दिया गया। 25 वर्षों के बाद जब देश 1973 और 1975 के बीच आर्थिक संकट में ग्रस्त हो गया, तो लोगों ने विकास के नेहरू मॉडल की अपेक्षा गांधीवादी योजना को एक सम्भव विकल्प के रूप में सोचना शुरू किया। जनता पार्टी शासन के छोटे से काल के दौरान इनमें से कुछ विचार छठी योजना के प्रारूप में सम्मिलित किए गए। भारतीय सन्दर्भ में विकास की गांधीवादी योजना एक हद तक अवश्य ही लाभदायक हो सकती है और इसलिए इसकी सिफारिश की जा सकती है। ठोस रूप में, विकास के गांधीवादी मॉडल के लिए आयोजन की वर्तमान प्रणाली में निम्नलिखित परिवर्तन करने होंगे-

(क) उत्पादन-प्रेरित आयोजन की अपेक्षा रोजगार-प्रेरित आयोजन की स्थापना- यहां मूल बात यह है कि बेरोजगारी हमारी सबसे बड़ी शत्रु है और इसके समाधान में ही निर्धनता एवं असमानताओं की समस्याओं का समाधान निहित है। इसलिए यह जरूरी है कि उत्पादन-प्रेरित आयोजन का प्रतिस्थापन रोजगार-प्रेरित आयोजन (Employment oriented planning) द्वारा किया जाए। इसके लिए ऐसे क्षेत्र निर्धारित करने आवश्यक हैं जो अधिक रोजगार क्षमता रखतें हों और जिनमें अधिक एवं कुशल उत्पादन भी सम्भव हो। "मोटे तौर पर पूंजी की अपेक्षा श्रम का अधिक प्रयोग करना चाहिए और किसी भी हालत में सरकार को भविष्य में किसी पूंजी-प्रधान परियोजना की अनुमति नहीं देनी चाहिए जहां कहीं भी श्रम-प्रधान विकल्प उपलब्ध हो।"[14]

(ख) कृषि एवं रोजगार क्षमता- कृषि के जिन क्षेत्रों में अधिक रोजगार कायम करने की अधिक क्षमता है, वे हैं; (क) खेती जिसमें पशु पालन, कम्पोस्ट तैयार करना, सफाई और गोबर गैस; (ख) ग्राम निर्माण कार्य अर्थात् सिंचाई परियोजनाएं, भू-रक्षण (Soil conservation), भू-उद्धरण (Soil reclamation), वनरोपण आदि और (ग) ग्राम तथा कुटीर उद्योग। गहन खेती के आधीन भूमि पर अपेक्षाकृत कहीं अधिक श्रमिकों को रोजगार दिलाया जा सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में 1971 में प्रति 100 एकड़ पर 39 श्रमिक लगे हुए थे और इस दृष्टि से भारत एक निम्न निष्पादन (Low performance) वाला देश माना जाता है परन्तु इसकी तुलना में जापान, दक्षिण कोरिया, ताइवान और मिश्र में 1965 के दौरान प्रति 100 एकड़ पर क्रमश: 87, 79, और 71 श्रमिक कार्य करते थे। ये देश उच्च-निष्पादन वाले राष्ट्र हैं जिनमें छोटी तथा अधिक श्रम-प्रधान फार्मों के आधार पर खेती की जाती है। इन देशों के अनुभव से पता चलता है कि कृषि में कुल उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ 500 से 600 लाख अतिरिक्त व्यक्तियों को रोजगार दिलाया जा सकता है। नये सिंचाई प्राप्त क्षेत्रों में रोजगार क्षमता (Employment potential) को 60 प्रतिशत बढ़ाया जा सकता है यदि यन्त्रीकरण (Mechanisation) सीमित रखा जाए अर्थात् केवल ऐसी मशीनों का प्रयोग किया जाए जो मानवीय प्रयास में सहायक हों या इसको दबाने की अपेक्षा इसके बोझ को हल्का करें... जापानी किस्म की फार्म-मशीनरी।"

(ग) बड़े बनाम छोटे उद्योग- विकास का गांधीवादी मॉडल कुटीर तथा लघु स्तर के उद्योगों के पक्ष में है और यह ऐसे बड़े पैमाने के उद्योगों के विरुद्ध है जो उपभोग वस्तुएं उत्पन्न करते हैं। चरणसिंह ने लिखा, "भविष्य में किसी मध्यम या बड़े पैमाने के उद्यम की स्थापना की अनुमति नहीं दी जाएगी यदि वह ऐसी वस्तुएं या सेवाएं उत्पन्न करता है जो कुटीर या लघु-स्तर के उद्यमों द्वारा उत्पन्न की जा सकती हैं और किसी लघु स्तर उद्योग की स्थापना की इजाजत नहीं दी जाएगी जो ऐसी वस्तुएं एवं सेवाएं उत्पन्न करेगा जो कुटीर उद्योगों द्वारा उत्पन्न की जा सकती हैं।" चरणसिंह तो उपभोग-वस्तुएं उत्पन्न करने वाले बड़े पैमाने के उद्योगों के इतने अधिक विरुद्ध थे कि उनका कहना था कि ऐसी उत्पादन-इकाइयां या तो अपने सारे उत्पादन का निर्यात करें या वे बन्द कर देनी चाहिएँ।

(घ) न्यायपूर्ण वितरण (Equitable distribution) भले ही हम समाजवाद की रट लगाए हुए हैं, परन्तु कुछ हाथों में आर्थिक शक्ति का बढ़ता हुआ संकेन्द्रण और आय की असमानता भारतीय अर्थव्यवस्था की दो प्रमुख बुराइयां हैं। गांधीजी वितरण की इस समस्या के सम्बन्ध में सम्भवत: सबसे उत्तम एवं स्वाभाविक समाधान प्रस्तुत करते हैं। सम्पत्ति का संचयन एवं आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण प्रत्यक्ष रूप में उत्पादन के साधनों के केन्द्रीकरण एवं बड़े पैमाने के उत्पादन के

14. Charan Singh, *India' Economic Policy* p. 102.

Scanned with CamScanner

केन्द्रीकरण का परिणाम है और जब कभी भी बड़े पैमाने का उत्पादन अनिवार्य हो जाए (जैसा कि मूल एवं कुंजी उद्योगों में), तो इसे सरकारी स्वामित्व एवं प्रबन्ध के आधीन करना चाहिए। गांधीवादी मॉडल में वितरण की समस्या को उत्पादन के स्तर पर हल करने की चेष्टा की गई है, न कि उपभोग के स्तर पर।

गांधीवादी मॉडल में राष्ट्रीय न्यूनतम जीवन-स्तर को कम से कम समय में प्राप्त करने की आशा व्यक्त की गई है। इसमें स्थिरता के साथ विकास और आय एवं सम्पत्ति के संकेन्द्रण को समाप्त करने का लक्ष्य भी रखा गया है। दूसरे शब्दों में, इसमें यह प्रयास किया गया है कि नेहरू-महलनोबिस मॉडल की कमजोरियाँ दूर की जा सकें।

4. नेहरूवादी और गांधीवादी मॉडलों का समन्वय—एकमात्र समाधान

जहां पर नेहरू मॉडल में भारी उद्योगों को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया, वहीं गांधीवादी मॉडल में कृषि को प्राथमिकता देने के साथ हस्तकलाओं और कुटीर उद्योगों को अधिक महत्त्व दिया गया। भारी उद्योगों पर आधारित नेहरू मॉडल ही 1950-60 और 1960-70 की अवधि में भारत के लिए उपयुक्त था क्योंकि भारी उद्योग का विकास देश को सैनिक दृष्टि से मजबूत बनाने के लिए आवश्यक था ताकि कोई भी विदेशी ताकत भारत पर आक्रमण न कर सके। इसके अतिरिक्त भारी उद्योगों के विकास द्वारा औद्योगिक आधार कायम किया गया ताकि औद्योगिक विस्तार हो सके और देश को विदेशी निर्भरता से मुक्त किया जा सके। अब जबकि प्रतिरक्षा के बारे में काफी प्रगति कर ली गई है और स्वयं-स्फूर्त विकास के लिए एक मजबूत बुनियाद कायम की जा चुकी है, तो यह अब सम्भव है कि आयोजन का बल भारी उद्योगों से हटाकर लघु एवं कुटीर उद्योगों पर किया जाए जो कि हल्के पूंजी उपभोग वस्तु उद्योगों की श्रेणी में आते हैं। जाहिर है कि विकास के गांधीवादी मॉडल को लागू करना अब उचित होगा क्योंकि नेहरू द्वारा निर्धारित विनियोग रणनीति से आर्थिक विकास की मजबूत बुनियाद कायम कर दी गई है।

सच तो यह है कि लघु स्तर एवं कुटीर उद्योग उत्पादन एवं रोजगार की दृष्टि से भारत में बहुत उपयोगी कार्यभाग अदा कर सकते हैं। परन्तु भविष्य में भारी उद्योगों के विकास की उपेक्षा करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होगा। चाहे भारत ने 1951 के पश्चात् उत्साहवर्द्धक प्रगति की है और यह भी ठीक है कि अब औद्योगीकृत देशों में इसका दसवां स्थान है परन्तु फिर भी इस्पात और बिजली के उत्पादन में भारत ने प्रति व्यक्ति उत्पादन की दृष्टि से बहुत ऊंचा स्तर प्राप्त नहीं किया है। ये दोनों वस्तुएं लघु एवं कुटीर उद्योगों के विस्तार के लिए आवश्यक हैं। 1974 में भारत ने प्रति व्यक्ति 11 किलोग्राम इस्पात उत्पन्न किया जबकि यू. एस. एस. आर. ने 541 किलोग्राम और यू. एस. ए. ने 623 किलोग्राम। इस्पात और बिजली पैदा करने में भारत अभी काफी पीछे है और इसलिए भारी उद्योगों में विनियोग में तेजी से कटौती करनी उचित नहीं होगी। इसके अतिरिक्त, आत्मनिर्भरता तथा प्रतिरक्षा प्रबन्ध भी उतने ही महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हैं, यदि अधिक महत्वपूर्ण नहीं, जितने कि गरीबी को हटाना, बढ़ती हुई असमानताओं को दूर करना। गांधीवादी मॉडल के नाम पर भारी उद्योग में विनियोग की उपेक्षा करना या इसकी गति को धीमा करना देश के लिए घातक होगा। परन्तु जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया गया है, गांधीजी सभी बड़े पैमाने के उद्योगों के विरुद्ध नहीं थे; वास्तव में गांधीजी योजना (1944) में कुछ चुने हुए आधारभूत उद्योगों अर्थात् संचालन शक्ति, लौह एवं इस्पात, मशीनरी एवं मशीनी औजार, भारी इंजीनियरिंग एवं भारी रसायन के महत्त्व को स्वीकार किया।

इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे मध्यम तथा बड़े पैमाने के उद्यमों से जो उपभोग वस्तुएं उत्पन्न करते हैं, कुटीर तथा लघु-स्तर उद्योगों की ओर विनियोग को मोड़ने के लिए तर्क दिए जा सकते हैं। मध्यम और बड़े पैमाने के उद्यमों को और लाइसैंस नहीं देने चाहिएँ और उत्पादन एवं रोजगार दोनों की दृष्टि से यह देश के लिए हितकर न होगा। नेहरू महलनोबिस मॉडल में लघु एवं कुटीर इकाइयों को भी महत्व दिया गया था। अधिक लागत के प्रश्न पर यह तर्क दिया गया कि देश में सस्ती बिजली की उपलब्धि होने के पश्चात् कोई कारण नजर नहीं आता कि छोटे पैमाने की इकाइयों की लागत बड़े पैमाने की इकाइयों से अधिक क्यों हो। परन्तु नेहरू-महलनोबिस मॉडल के कार्यान्वयन के दौरान लघु स्तर एवं कुटीर उद्योगों के प्रति सौतेली मां का व्यवहार किया गया और बड़े तथा मध्यम स्तर के उद्योगों को छोटी इकाइयों का गला दबाने की इजाजत दी गई। 1977 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में सरकार इस भूल का सुधार करना चाहती थी। इसी कारण औद्योगिक नीति वक्तव्य में यह साफ कहा गया, "अभी तक औद्योगिक नीति का बल मुख्यत: बड़े उद्योगों पर रहा है, कुटीर उद्योग तो पूर्णतया उपेक्षित हैं और छोटे उद्योगों का कार्यभार मामूली रहा है। नई औद्योगिक नीति का मुख्य बल लघु तथा कुटीर उद्योगों को प्रभावी रूप में प्रोन्नत करना है ताकि वे ग्रामीण क्षेत्रों और छोटे कस्बों में बहुत अधिक फैल जाएं।"

कुटीर तथा लघु उद्योगों को सक्रिय समर्थन एवं प्रोत्साहन देने का यह अर्थ नहीं कि उपभोग वस्तु क्षेत्र में वर्तमान बड़े एवं मध्यम स्तर की इकाइयां या तो बन्द कर दी जाएं या वे केवल इस शर्त पर चलने दी जाएं कि वे अपने सारे उत्पादन का निर्यात

Scanned with CamScanner

करेंगी। ये सुझाव अविवेकपूर्ण एवं अवास्तविक हैं। ऐसी इकाइयां जो कि बहुत साल पहले लगाई गईं और जो वर्षों से बाजार के लिए (अन्तर्देशीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय) उत्पादन कर रही हैं, बन्द नहीं कर देनी चाहिएं। परन्तु इन उत्पादन इकाइयों को अन्य नए क्षेत्रों में उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए और इन्हें जितना वे अधिक निर्यात बढ़ा सकें, बढ़ाने की सलाह देनी चाहिए। इसके साथ यह भी जरूरी है कि लघु क्षेत्र को अपने उत्पादन की किस्म को बढ़िया बनाने के लिए सहायता देनी चाहिए, इसकी उत्पादन लागत कम करनी चाहिए ताकि ये प्रतिस्पर्द्धी दरों (Competitive rates) पर वस्तुएं उपलब्ध करा सकें। यह उल्लेख करना रुचिकर होगा कि गांधीवादी योजना (1944) में "निजी स्वामित्व के आधीन उद्योगों पर निर्मित वस्तुओं की कीमतों, लाभ एवं श्रम की दशाओं पर सरकारी नियन्त्रण की सामान्य नीति निर्धारण पर बल दिया गया है। इसमें सरकार द्वारा विदेशी परिसम्पत् (Foreign assets) के क्रय और कुटीर तथा बड़े पैमाने के उद्योगों में स्पर्धा का नियमन करने का भी उल्लेख किया गया है।"

चरणसिंह ने विकास के चीनी मॉडल की प्रशंसा की है क्योंकि साम्यवादी चीन ने गांधीवादी मार्ग अपनाया और भारत की तुलना में अपनी जनता को अच्छा भोजन एवं वस्त्र उपलब्ध कराए हैं। चरणसिंह लिखते हैं "अकाट्य स्रोतों से प्राप्त विभिन्न रिपोर्टों से यह संकेत मिलता है कि 1962 के पश्चात् माओ-त्से-तुंग ने कृषि को न केवल सर्वोच्च प्राथमिकता दी बल्कि अपने देश के निर्माण में बड़े पैमाने के यंत्रीकृत प्रोजेक्टों एवं उद्योगों की तुलना में मानवीय श्रम एवं विकेन्द्रीकृत श्रमप्रधान उद्यमों पर अधिक विश्वास रखा।"[15] यह अत्यन्त सरलीकृत विश्लेषण है। यह इस बात की उपेक्षा करता है कि 1962 से पहले चीन ने कृषि की अपेक्षा भारी उद्योगों को प्रथम स्थान दिया। उदाहरणार्थ, पहली पंचवर्षीय योजना (1953-57) में चीन ने अपने कुल विनियोग का 50 प्रतिशत से भी कुछ अधिक विनियोग भारी उद्योगों पर किया। केवल बाद में, चीन ने कृषि तथा उद्योगों के साथ-साथ विकास को आरम्भ किया। चीनियों ने इसे 'दो टांगों पर चलने का सिद्धान्त' कहा। इसके अतिरिक्त, ध्यान देने योग्य बात यह है कि चीन ने भारी उद्योगों के महत्व की उपेक्षा नहीं की, भले ही उसने कृषि को प्रथम स्थान दिया। यह भी सत्य है कि भारी उद्योग के कार्यभाग को प्रतिरक्षा एवं आधारसंरचना (Infrastructure) के आधार के रूप में कभी भी कम महत्त्वपूर्ण नही समझा गया। इस कारण चीन प्रथम श्रेणी की एक महान सैनिक शक्ति बन गया है जो कि दुनिया के बड़े से बड़े साम्राज्य को चुनौती दे सकता है; उसने रूसी सहायता और रूसी तकनीकी विशेषज्ञों पर अपनी निर्भरता समाप्त कर दी है और इससे उसकी विकास-प्रक्रिया पर कोई दुष्प्रभाव भी नहीं पड़ा। चीन की सफलता का राज इस बात में है कि उसने रूसी मॉडल और गांधीवादी मॉडल में समन्वय किया। भारतीय आयोजकों का दोष यह नहीं था कि उन्होंने नेहरू महलनोबिस विकास रणनीति का निर्माण किया, बल्कि उनकी कमजोरी इसके कार्यान्वयन में विफलता थी। इसमें बहुत हद तक भारी उद्योग के रूप में आधार कायम करने को तो कार्यान्वित किया गया परन्तु कृषि तथा कुटीर एवं लघु स्तर क्षेत्र के सम्बन्ध में बनाई गई योजनाओं को सफलतापूर्वक लागू करने में निराशा हुई।

विकास की वर्तमान अवस्था में रोजगार उद्देश्य पर बल देने की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि विकास की प्रक्रिया को त्वरित करने की। रोजगार प्रधान आयोजन के समर्थन में बहुत प्रभावी तर्क है। किन्तु नेहरू महलनोबिस मॉडल की भर्त्सना इस आधार पर करनी अनुचित कि इसने कृषि एवं लघु क्षेत्र की उपेक्षा की और इस कारण देश को सभी आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा, अर्थात् कीमतों की स्फीतिकारी वृद्धि, वस्तुओं के तीव्र अभाव, औद्योगिक रुग्णता (Industrial sickness), बढ़ती हुई असमानताएं और फैलती हुई गरीबी, आदि। भारी उद्योग की उपेक्षा करके समग्र बल कृषि एवं लघु क्षेत्र पर देना भी अनुचित होग। यह बात भूलनी नहीं चाहिए कि संचालन शक्ति विकास प्रोग्रामों में अपर्याप्त विनियोग और संचालन शक्ति के अपर्याप्त जनन एवं वितरण के कारण कृषि-क्षेत्र में विफलता हुई। वास्तव में मानवीय एवं भौतिक संसाधनों (Human and material resources) के प्रयोग की दृष्टि से भारी उद्योग एवं कृषि क्षेत्र में कोई झगड़ा नहीं। दोनों का एक साथ विकास किया जा सकता है। यदि संतुलित विकास की धारणा 1950-60 के दशकों में ठीक थी, तो वह बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में और भी उचित समझी जानी चाहिए।

5. विकास का उ.नि.वै. मॉडल

विकास का उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण जो बड़े जोर-शोर से 1991 में चालू किया गया का मुख्य उद्देश्य विकास के लिए एक नई रणनीति अपनाना था जिसमें निजीकरण (Privatisation) और वैश्वीकरण (Globalisation) पर बल दिया जाए। देश के स्तर पर दो मुख्य परिवर्तन किए गए। प्रथम, सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योग निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गए। चाहे सरकार हानि-उठाने वाले सार्वजनिक उद्यमों को निजी क्षेत्र को सौंपना चाहती थी, किन्तु वह इस लक्ष्य

15. Charan Singh, *India's Economic Policy*, p. 59.

Scanned with CamScanner

में विफल रही क्योंकि इन्हें लेने वाले उद्यमों में अनिवेश (Disinvestment) आरम्भ कर दिया और इससे प्राप्त राशि को राजकोषीय घाटे (Fiscal deficits) को कम करने के लिए इस्तेमाल किया। अत: विभिन्न सामाजिक सीमाबन्धनों के कारण सरकार अपने निजीकरण के प्रोग्राम को लागू न कर पायी, चाहे यह अर्थव्यवस्था को निजी क्षेत्र-देशीय एवं विदेशी-के प्रति उदार बनाने में सफल हुई।

दूसरे, बिना लाइसेंस प्राप्त किए निजी क्षेत्र को औद्योगिक इकाइयां लगाने की इजाजत देकर सरकार ने वे बहुत-सी बेड़ियां जो निजी क्षेत्र के निवेश में रुकावट थीं या इसके निवेश में विलम्ब का कारण थीं, काट दीं।

तीसरे, एम. आर. टी. पी. कम्पनियों के संदर्भ में सरकार ने परिसम्पत्तियों (Assets) की सीमा को समाप्त करके व्यापारिक घरानों (Business houses) को स्वतन्त्र कर दिया कि वे एकाधिकार आयोग की अनुमति लिए बिना निवेश कर सकते हैं। जाहिर है कि विकास को प्रोन्नत करने का विचार सरकार के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण था और साम्यता (Equity) के प्रश्न की अभी अनदेखी की जा सकती थी।

चौथे, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign Direct Investment) को सुविधाजनक बनाने के लिए सरकार ने उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को 51 प्रतिशत तक कर लेने की स्वीकृति का निर्णय किया। सरकार 51 प्रतिशत से अधिक विदेशी निवेश के प्रस्तावों पर भी विचार कर सकती है परन्तु ऐसे प्रस्तावों के लिए सरकार से पहले स्वीकृति प्राप्त करनी होगी। विदेशी तकनीशियनों, देश में विकसित तकनालाजी के विदेशी परीक्षण के लिए कोई स्वीकृति लेने की जरूरत नहीं होगी, भले इनके लिए मुआवजा दिया जाए।

पांचवें, जीर्ण रूप में बीमार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (Board of Industrial and Financial Reconstruction) के हवाले किया जाएगा ताकि वह इनके पुनरुत्थान/पुनर्वास सम्बन्धी योजनाएं तैयार करे। श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए एक सामाजिक सुरक्षा प्रणाली कायम की जाएगी ताकि पुनर्वास के उपायों द्वारा प्रभावित श्रमिकों को इनके दुष्प्रभाव से बचाया जा सके।

छठे, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के निष्पादन को उन्नत करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबन्धकों और सरकारी कम्पनियों को बोर्डों को अधिक स्वायत्तता दी जाएगी और इन्हें अधिक व्यावसायिक (Professional) बनाया जाएगा।

अन्तिम, अन्य देशों से निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए अर्थव्यवस्था को खोल दिया जाएगा। विदेशी पूंजी, तकनालाजी और अन्य सम्बन्धित आयात को सुविधाजनक बनाने के लिए आयात-शुल्क तथा अन्य अवरोधक (Barriers) घटाए जाएंगे।

पूर्व-प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिंम्हा राव और पूर्व वित्त मंत्री डा. मनमोहन सिंह द्वारा चालू किए गए विकास के मॉडल में निजी क्षेत्र को एक बड़ा कार्यभाग अदा करने पर बल दिया गया है। इसमें हमारी विकास-प्रक्रिया में विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग की कहीं बड़ी मात्रा द्वारा पूर्ति की कल्पना की गयी है। इसमें निर्यात-प्रेरित विकास (Export-led growth) की रणनीति अपनायी जाएगी और पहले चल रही आयात प्रतिस्थापन रणनीति (Import substitution strategy) का परित्याग किया जाएगा। इसमें सरकार के कार्यभाग को महत्त्वपूर्ण रूप में कम किया जाएगा और इस प्रकार बुनियादी रूप में आयोजन (Planning) का परित्याग करके अधिक उदार और बाजार-प्रेरित विकास का ढांचा कायम किया जाएगा।

आलोचकों ने उ.नि.वै. विकास-मॉडल में कुछ बुनियादी कमजोरियों का संकेत दिया है।

पहला, इसका केन्द्र बहुत संकुचित है क्योंकि यह मुख्यत: निगम क्षेत्र (Corporate sector) तक सीमित है जो कि कुल देशीय उत्पाद में केवल 10 प्रतिशत का योगदान देता है। दूसरे, इस मॉडल में कृषि तथा अन्य कृषि-आधारित उद्योगों की उपेक्षा की गयी है जो कि जनता के लिए रोजगार-जनन का मुख्य स्रोत हैं। तीसरे, उपभोग वस्तु क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय निगमों (Multinationals) के प्रवेश की स्वीकृति देकर इस मॉडल ने लघु क्षेत्र में उपभोग वस्तुओं का उत्पादन करने वाले छोटे उद्यमियों के हितों पर करारी चोट की है। यदि बहुराष्ट्रीय निगमों का बेरोक-टोक प्रवेश जारी रहता है, तो इससे लघु-क्षेत्र में श्रम-विस्थापन (Labour displacement) का खतरा उत्पन्न हो जाएगा। चौथे, इसमें सन्देह नहीं कि निर्यात प्रोन्नत हुए हैं परन्तु आयात को सुविधाजनक बनाने की नीति के अधीन सरकार ने आयात-खिड़की को बहुत ही ज्यादा खोल दिया है और इसके नतीजे के तौर पर बढ़ते हुए निर्यात के लाभ अपेक्षाकृत और तेज रफ्तार से बढ़ते आयात से निष्प्रभावी हो गए और इस प्रकार व्यापार-घाटा बढ़ गया है। अब इस बात पर लगभग सहमति प्राप्त हो गयी है कि बहुराष्ट्रीय निगमों के अन्धाधुन्ध प्रवेश को रोकना चाहिए, विशेषकर उपभोग वस्तु क्षेत्र में और ऐसे क्षेत्रों में जिनमें देशीय सामर्थ्य विकसित हो चुकी है अन्तिम, इस मॉडल में विकास के पूंजी-प्रधान ढांचे की कल्पना की गयी है और इसके रोजगार-क्षमता बढ़ाने के बारे में गंभीर सन्देह है। यह कहा जा रहा है कि इसके कारण अल्पकाल में बेरोजगारी हो जाएगी परन्तु दीर्घकाल में यह इस समस्या का समाधान कर लेगा। परन्तु दीर्घकाल की अवधि कितनी लम्बी होगी, इसका कोई संकेत नहीं दिया गया।

Scanned with CamScanner